



Original Article

21वीं सदी के हिंदी साहित्य तथा सिनेमा में चित्रित स्वास्थ्य समस्याएँ : विशेष संदर्भ में दिव्यांग विमर्श

श्री. मंदार सूर्यकांत शिंदे

शोध छात्र

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

Manuscript ID:

IJAAR-C130374

ISSN: 2347-7075

Impact Factor – 8.141

Volume - 13

Issue - 3

January – February 2026

Pp. 386 - 389

Submitted: 07 Feb. 2026

Revised: 16 Feb. 2026

Accepted: 20 Feb. 2026

Published: 28 Feb. 2026

Corresponding Author:

श्री. मंदार सूर्यकांत शिंदे

Quick Response Code:



Website: <https://ijaar.co.in/>



DOI: 10.5281/zenodo.22787334

DOI Link:

<https://doi.org/10.5281/zenodo.22787334>



Creative Commons



सार:

21वीं सदी का हिंदी साहित्य और सिनेमा समाज के विभिन्न वर्गों की समस्याओं को उजागर करने का सशक्त माध्यम बने हैं। स्वास्थ्य समस्याओं के अंतर्गत दिव्यांगता (विकलांगता) एक ऐसा विमर्श है जिसे लंबे समय से हाशिये पर रखा गया। यह शोध-पत्र 21वीं सदी के चुनिंदा हिंदी उपन्यासों, कहानियों और फिल्मों में दिव्यांगों के चित्रण का विश्लेषण करता है। अध्ययन में पाया गया कि प्रारंभिक दौर में दिव्यांगों को करुणा, दया या उपहास की वस्तु मात्र प्रस्तुत किया गया, किंतु 21वीं सदी में साहित्य और सिनेमा ने अधिक संवेदनशील और यथार्थपरक दृष्टिकोण अपनाया है। फिर भी, यह चित्रण पर्याप्त नहीं है। इस विमर्श को और अधिक गहराई, आवृत्ति और सम्मान की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द: दिव्यांग विमर्श, हिंदी साहित्य, हिंदी सिनेमा, स्वास्थ्य समस्याएँ, सामाजिक बहिष्कार, संवेदनशीलता

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)

This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International License (CC BY-NC-SA 4.0), which permits others to remix, adapt, and build upon the work non-commercially, provided that appropriate credit is given and that any new creations are licensed under identical terms.

How to cite this article:

श्री. मंदार सूर्यकांत शिंदे. (2026). 21वीं सदी के हिंदी साहित्य तथा सिनेमा में चित्रित स्वास्थ्य समस्याएँ: विशेष संदर्भ में दिव्यांग विमर्श. *International Journal of Advance and Applied Research*, 13(3), 386 - 389. <https://doi.org/10.5281/zenodo.22787334>

प्रस्तावना:

स्वास्थ्य केवल शारीरिक निरोगता का नाम नहीं है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार स्वास्थ्य शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से पूर्ण कल्याण की अवस्था है। इस दृष्टि से देखें तो दिव्यांगता (विकलांगता) एक गंभीर

स्वास्थ्य समस्या है, किंतु इससे भी अधिक गंभीर समस्या यह है कि समाज दिव्यांगों को स्वास्थ्य समस्या से अधिक एक 'सामाजिक कलंक' के रूप में देखता है।

21वीं सदी का हिंदी साहित्य और सिनेमा इस बात के साक्षी हैं कि उन्होंने लगभग हर सामाजिक समस्या को उठाया



है - जाति, वर्ग, लिंग, धर्म, आर्थिक असमानता, लेकिन दिव्यांग विमर्श अब भी उपेक्षित ही है। चाहे साहित्य की बात हो या सिनेमा की, दिव्यांग पात्र या तो पृष्ठभूमि में रहे हैं, या फिर केवल 'दया के पात्र' के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। यह शोध-पत्र इसी अंतराल को भरने का प्रयास करता है। यहाँ हम देखेंगे कि 21वीं सदी के हिंदी साहित्य और सिनेमा में दिव्यांगों के स्वास्थ्य और सामाजिक समस्याओं को किस प्रकार चित्रित किया गया है, और यह चित्रण कहाँ सफल हुआ तथा कहाँ विफल।

दिव्यांगता: एक स्वास्थ्य समस्या या सामाजिक निर्माण?

यह प्रश्न पूछना आवश्यक है - क्या दिव्यांगता केवल एक शारीरिक या मानसिक दशा है, या समाज ने इसे 'समस्या' बना दिया है? उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति दृष्टिबाधित है, तो उसकी विकलांगता उसकी आँखों में है, किंतु उसका बहिष्कार, उसकी उपेक्षा और उसका अलगाव समाज की मानसिकता में है। 21वीं सदी के आरंभ में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 'विकलांग' के स्थान पर 'दिव्यांग' शब्द का प्रयोग प्रारंभ किया। इस शब्द-परिवर्तन का उद्देश्य था कि इन व्यक्तियों की विलक्षण प्रतिभा को सम्मान मिले। किंतु यह केवल शब्द-सीमा तक सीमित रहा। साहित्य और सिनेमा ने इसे उतनी गंभीरता से नहीं अपनाया जितनी आवश्यक थी।

स्वास्थ्य समस्या के रूप में दिव्यांगता के दो पहलू हैं: प्रथम: चिकित्सीय पहलू - दिव्यांगता को रोकने, उपचार करने और पुनर्वास की आवश्यकता। द्वितीय: सामाजिक पहलू - समान अवसर, सम्मान, शिक्षा, रोजगार और समाज में भागीदारी। साहित्य और सिनेमा का कार्य केवल पहले पहलू को दिखाना नहीं है, बल्कि दूसरे पहलू को उजागर करना है - ताकि समाज की मानसिकता बदले। दुर्भाग्य से, 21वीं सदी के

अधिकांश साहित्य और सिनेमा में दिव्यांगों को या तो 'असाधारण' बना दिया जाता है (जैसे - कोई अंधा व्यक्ति अद्भुत ताकतवर हो) या फिर अति-दयनीय बना दिया जाता है। दोनों ही चरम सत्य से दूर हैं।

21वीं सदी के हिंदी साहित्य में दिव्यांग चित्रण:

21वीं सदी के हिंदी साहित्य में दिव्यांग पात्रों की उपस्थिति बहुत सीमित रही है। कुछ चुनिंदा रचनाओं में ही यह विमर्श गंभीरता से उठा है। मृदुला गर्ग की कहानियों में विकलांग स्त्रियों का चित्रण मिलता है। उनकी कहानी 'अंधी गली' में एक नेत्रहीन लड़की का आत्म-संघर्ष दिखाया गया है। यहाँ लेखिका ने दया का भाव नहीं, बल्कि स्वाभिमान और जीने की चाह को प्राथमिकता दी है। उदय प्रकाश के उपन्यास 'मोहन दास' में एक विकलांग चरित्र की पीड़ा को बड़ी संवेदनशीलता से चित्रित किया गया है। लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि शारीरिक अक्षमता मानसिक अक्षमता नहीं होती।

ममता कालिया की कहानियों में दिव्यांगों के प्रति सामाजिक व्यवहार की क्रूरता को उजागर किया गया है। उनकी एक कहानी में एक बहरे व्यक्ति को नौकरी से निकाल दिया जाता है, केवल इसलिए क्योंकि वह फोन पर बात नहीं कर सकता। यह एक ऐसा यथार्थ है जो हमारे समाज में आम है, परंतु साहित्य में कम ही आता है। लेखक त्रिभुवन की कहानी 'सुनो, मैं सुन सकता हूँ' में एक बहरे-गूंगे व्यक्ति के आंतरिक संसार को अद्भुत ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यह कहानी इस बात का प्रमाण है कि भाषा के अभाव में भी मनुष्य का भाव-संसार बहुत समृद्ध होता है। किंतु समस्या यह है कि ये रचनाएँ अत्यधिक कम हैं। हिंदी साहित्य के प्रमुख पुरस्कारों (जैसे साहित्य अकादमी, ज्ञानपीठ) से सम्मानित अधिकांश उपन्यासों



में दिव्यांग पात्र या तो हैं ही नहीं, या फिर वे केवल एक 'प्रतीक' मात्र हैं। उनके पास कोई व्यक्तित्व नहीं है, कोई कहानी नहीं है, कोई संघर्ष नहीं है। वे केवल 'करुणा' जगाने के लिए हैं।

21वीं सदी के हिंदी सिनेमा में दिव्यांग चित्रण:

हिंदी सिनेमा ने दिव्यांगों को साहित्य से अधिक बार प्रस्तुत किया है, किंतु यह चित्रण प्रायः रूढ़िवादी रहा है। सकारात्मक उदाहरण:

'ब्लैक' (2005): संजय लीला भंसाली की यह फिल्म एक नेत्रहीन और बहरी-गूंगी लड़की मिशेल की कहानी है। फिल्म ने यह दिखाया कि कैसे शिक्षा और धैर्य से एक दिव्यांग व्यक्ति अपनी पूरी क्षमता प्राप्त कर सकता है। यह फिल्म 21वीं सदी के हिंदी सिनेमा में दिव्यांग विमर्श की सबसे महत्वपूर्ण फिल्मों में से एक है। 'बर्फी!' (2012): अनुराग बसंत की इस फिल्म में बहरे-गूंगे बर्फी का चरित्र दिखाया गया। यहाँ दिव्यांगता को उपहास या करुणा का विषय नहीं, बल्कि सामान्य जीवन के हिस्से के रूप में प्रस्तुत किया गया। फिल्म की सबसे बड़ी सफलता यह थी कि उसने दिखाया - एक दिव्यांग व्यक्ति भी पूरी तरह प्रेम कर सकता है, संघर्ष कर सकता है, और अपनी मंजिल पा सकता है। 'इकबाल' (2005): यह फिल्म एक बहरे-गूंगे क्रिकेटर की कहानी है। यहाँ दिव्यांगता को एक बाधा के रूप में दिखाया गया है, किंतु साथ ही यह भी कि यह बाधा असंभव नहीं है। फिल्म ने यह संदेश दिया कि प्रतिभा के सामने शारीरिक सीमाएँ छोटी पड़ जाती हैं। 'तारे ज़मीन पर' (2007): आमिर खान की इस फिल्म ने डिस्लेक्सिया (पढ़ने-लिखने की अक्षमता) को पहली बार इतने गंभीरता और संवेदनशीलता से पर्दे पर उतारा। यह फिल्म मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं पर बनी सबसे महत्वपूर्ण हिंदी फिल्मों में से एक है।

नकारात्मक या अपर्याप्त चित्रण:

अधिकांश बॉलीवुड फिल्मों में दिव्यांग पात्र या तो 'दुखद नायक' होते हैं जिनके प्रति दर्शक केवल आँसू बहाएँ, या फिर वे 'हास्य' के पात्र होते हैं। 'गोलमाल' श्रृंखला में लंगड़े-लूलों की नकल करके हँसी उड़ाई जाती है। 'हाउसफुल' जैसी फिल्मों में तो हकलाने वाले व्यक्ति का मजाक बनाया जाता है। यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि 21वीं सदी में भी सिनेमा इस स्तर की असंवेदनशीलता दिखा रहा है। 'कबीर सिंह' (2019) जैसी फिल्मों में शराबखोरी और आक्रामकता को रोमांटिक बना दिया गया, जो एक गंभीर मानसिक स्वास्थ्य समस्या है। यह दर्शाता है कि सिनेमा स्वास्थ्य समस्याओं को कितनी सतही तरीके से लेता है।

साहित्य और सिनेमा के चित्रण में अंतराल:

उपरोक्त विश्लेषण से तीन प्रमुख कमियाँ स्पष्ट होती हैं:

- मात्रात्मक कमी: दिव्यांग विमर्श पर रचनाएँ बहुत कम हैं। हर सौ उपन्यासों या फिल्मों में से मुश्किल से एक-दो ही इस मुद्दे को छूते हैं।
- गुणात्मक सीमा: जो रचनाएँ हैं, उनमें भी दिव्यांग पात्र प्रायः 'आदर्श' या 'अतिमानवीय' बना दिए जाते हैं। यथार्थवादी चित्रण अभी भी दुर्लभ है।
- विविधता का अभाव: दिव्यांगता के प्रकारों पर ध्यान नहीं दिया जाता। दृष्टिबाधित और बहरे-गूंगे पात्र तो कभी-कभार आ जाते हैं, किंतु मानसिक विकलांगता, बहु-विकलांगता, या लाइलाज शारीरिक रोगों पर लगभग कुछ नहीं लिखा या बनाया गया।



आवश्यक दिशा-निर्देश:

- इस विमर्श को आगे बढ़ाने के लिए कुछ आवश्यक सुझाव हैं:
- साहित्यकार और पटकथा लेखक दिव्यांग पात्रों को केवल 'पृष्ठभूमि' या 'प्रतीक' न बनाकर उन्हें केंद्रीय, सशक्त और यथार्थवादी चरित्रों के रूप में प्रस्तुत करें।
- दिव्यांगता को 'दैवीय श्राप' या 'अद्भुत प्रतिभा' के रूप में दिखाने के बजाय एक सामान्य मानवीय अवस्था के रूप में दिखाया जाए।
- मानसिक विकलांगता पर विशेष ध्यान दिया जाए, जो आज भी सबसे अधिक उपेक्षित विषय है।
- सिनेमा में दिव्यांग चरित्रों के लिए दिव्यांग कलाकारों को अवसर दिया जाना चाहिए, ताकि चित्रण अधिक प्रामाणिक हो सके।

निष्कर्ष:

21वीं सदी के हिंदी साहित्य और सिनेमा ने दिव्यांगता को एक स्वास्थ्य समस्या के रूप में चित्रित करना प्रारंभ किया है, किंतु यह चित्रण अभी प्रारंभिक अवस्था में है। 'ब्लैक', 'बर्फी!', 'तारे ज़मीन पर' जैसी फिल्मों तथा मृदुला गर्ग, उदय प्रकाश, ममता कालिया जैसे साहित्यकारों के प्रयास सराहनीय हैं, परंतु ये पर्याप्त नहीं हैं। जब तक साहित्य और सिनेमा दिव्यांगों को केवल 'समस्या' के रूप में देखेंगे, समाज भी उन्हें उसी दृष्टि से देखेगा। आवश्यकता है एक नई दृष्टि की - जहाँ दिव्यांगता को स्वास्थ्य समस्या के रूप में तो स्वीकार किया

जाए, किंतु दिव्यांग व्यक्ति को उसके पूर्ण मानवाधिकारों के साथ स्वीकार किया जाए। जैसा कि हरिकृष्ण तैलंग ने कहा है, दिव्यांग व्यक्ति दया नहीं, केवल अपना अधिकार, सम्मान और मानवीय व्यवहार चाहते हैं। साहित्य और सिनेमा का कर्तव्य है कि वे इस सम्मान को स्थापित करने में सहायक हों, न कि उपहास या करुणा की वस्तु बनाए रखें।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. गर्ग, मृदुला। अंधी गली एवं अन्य कहानियाँ। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008।
2. प्रकाश, उदय। मोहन दास। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012।
3. कालिया, ममता। दुख-सुख के बीच। वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015।
4. त्रिभुवना सुनो, मैं सुन सकता हूँ। हिंदी चेतना प्रकाशन, दिल्ली, 2018।
5. भंसाली, संजय लीला (निर्देशक)। ब्लैक। 2005, फिल्म।
6. बसंत, अनुराग (निर्देशक)। बर्फी! 2012, फिल्म।
7. आमिर खान (निर्देशक)। तारे ज़मीन पर। 2007, फिल्म।
8. नागेश कुकुनूर (निर्देशक)। इकबाल। 2005, फिल्म।
9. विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO). "Health Definition". www.who.int
10. तैलंग, हरिकृष्ण। अपंग जिनसे दुनिया दंग। नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2019।